संगति

भाग – ४

इस लेख की श्रृंखला के पिछले तीन भागों में **'संगति'** के विषय में **सरसरी तोर पर** विचार की गयी है ।

इस विषय के **गहन-गुप्त भावों तथा भेदों** को गुरबाणी के प्रकाश में प्रकट करने का प्रयास अगले भागों में किया जाएगा ।

पिछले लेख में बताया जा चुका है कि **'संगति' ही जीवन को** —

अच्छा	या	बुरा
सुखदायी	या	दुखदायी
अरोग	या	रोगी
प्रफुल्लित	या	मुरझाया
शान्त	या	अशान्त
नेक	या	बद
मुक्ति	या	बंधन
स्वर्ग	या	नरक
उन्नति	या	अवनति
निर्मल	या	मलिन
सफल	या	असफल
याद	या	भूल
रसदायक	या	फोकट
दैवीय	या	मायिकी

बनाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन या माध्यम है ।

जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलू खाइ ।। (पृ १३६९)

काहू दिसा के पवन गवन कै बरखा है
काहू दिसा कौं पवन बादर बिलात है ।।

काहू जल पान कीए रहत अरोग देही
काहू जल पान बिआपै बिथा बिललात है ।।
काहू ग्रिह की अगनि पाक शाक सिधि करै
काहू ग्रिह की अगनि भवन जरात है ।।
काहू की संगति मिलि जीवन मुकति होइ
काहू की संगति मिलि जमपूरि जात है ।। (क. भा. गु ५४९)

परन्तु हम अपने बनाये हुए **मानसिक जीवन प्रवाह** (routine) में इतने व्यस्त तथा **खचित** हैं, कि हमें अपने-अपने **घड़े** हुए अथवा दृढ़ किए हुए मानसिक **दायरे** से बाहर **देखने तथा इसको परखने की** आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती ।

प्राकृतिक रूप से हमारे **मन का रुझान या 'बहाव' निम्न रुचियों** की ओर होने के कारण, 'जीव' बहुत शीघ्र तुच्छ तथा मलिन रुचियों की 'संगति' की ओर खिंच जाता है ।

उदाहरण स्वरूप **किसी** शराबी को महसूस भी हो जाये कि शराब अत्यन्त बुरी, हानिकारक तथा दुखदायी है और वह अपने **ऊपरी** मन से फैसला भी कर लेता है कि आगे के लिए शराब छोड़ देनी है । परन्तु, जब भी शराब के ठेके के पास से गुज़रता है या किसी अन्य शराबी की 'संगति' होती है, तब उस के संस्कारों में **धँसी-बसी-रसी** हुई शराब की **रुची** फिर जाग्रत **हो** उठती है तथा वह फिर से शराब पी लेता है । इस प्रकार वह स्वंय बनायी हुई रुचि अथवा स्वभाव का गुलाम बन जाता है तथा उस के मन के **ऊपरी निश्चय** निष्फल हो जाते हैं ।

इस से स्पष्ट है कि जीव स्वंय रची हुई आदतों, रुचियों अथवा संस्कारों को **अपने आप बदलने में असमर्थ है** । जीव के वर्तमान संस्कार — तुच्छ रव्यालों, कर्मों तथा वातावरण की 'संगति' द्वारा बने तथा दृढ़ हुए हैं । इसलिए दृढ़ हुए संस्कारों या व्यक्तित्व को बदलने के लिए **उत्तम-पवित्र दामनिक आत्मिक संगति अनिवार्य है ।**

इन तुच्छ 'रुचियों'अथवा तुच्छ संगति में **खचित** हो कर हमारा मन और भी मलिन हो जाता है । इस प्रकार हमारे मन की 'रुचि' **उत्तम संगति के प्रभाव से**

आकर्षित होने में अस्मर्थ हो जाती है। इस दशा में हमारे मन की 'संगति' के विषय में 'निर्णय शक्ति' या **'विवेक बुद्धि' भी क्षीण या 'धुँधली' हो जाती है।**

दूसरे शब्दों में 'जीवन' को उच्च-उत्तम बनाने के लिए हमारी वर्तमान दशा को **पहचानने, पड़तालने तथा परखने की अति आवश्यकता है।** ताकि हम निर्णय कर सकें कि हमारे जीवन का **वर्तमान वेग** किस ओर जा रहा है। इस 'निर्णय' के बिना हमारा जीवन बदल नहीं सकता तथा अपने पुराने वेग में ही बहता रहेगा।

अहम् के रंग में हमें अपनी कमजोरियों, **कमियों** या अवगुणों का **अहसास ही नहीं होता** तथा हम भले-भद्र, सयाने तथा **अफलातून** बने रहते हैं।

अपितु मायिकी रंगत की रुचियों के कारण हम अन्य जीवों की कमियों तथा अवगुणों को चुनते, देखते तथा बढ़ा चढ़ा कर निंदा-चुगली कर के स्वाद लेते हैं।

परन्तु इस के ठीक विपरीत हमें अपनी **कमियों** तथा अवगुण भरे वर्तमान मायिकी मलिन जीवन को पड़तालने, पहचानने तथा परखने के लिए गुरबाणी यूँ **प्रेरणा व ताड़ता** करती है —

इसु मन कउ कोई खोजहु भाई ।। (पृ ३३०)

आपणा आपु न पछाणै मूड़ा अवरा आखि दुखाए ।। (पृ ५४९)

आपस कउ बहु भला करि जाणहि मनमुखि मति न काई ।।
साधू जन की निंदा विआपे जासनि जनमु गवाई ।। (पृ ६०१)

बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरु परेसानी माहि ।। (पृ ७२७)

आठ पहर चितवै नही पहुचै बुरा चितवत चितवत मरीऐ ।। (पृ ८२३)

निंदक दुसट वडिआई वेखि न सकनि
ओन्हा पराइआ भला न सुखाई ।। (पृ ८५०)

पंडित इसु मन का करहु बीचारु ।।
अवरु कि बहुता पड़हि उठावहि भारु ।। (पृ १२६१)

फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख ।।
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु ।। (पृ १३७८)

गुरबाणी के इन उपदेशों की ओर हम ध्यान ही नहीं देते या **ऊपरी** मन से पढ़-सुन कर **भुला देते हैं।** इसी कारण हमें वर्तमान जीवन की **ग्लानि का अहसास**

नहीं होता तथा हम अपने पुराने ग्लानि पूर्ण तुच्छ जीवन में ही **सन्तुष्ट तथा मस्त रहते हैं ।**

हमारे जीवन अथवा व्यक्तित्व के प्रत्येक पक्ष में हमारे संस्कारों की दृढ़ हुई **'संगत'** अवश्य ही उभर कर हमारे मानसिक, धार्मिक तथा आत्मिक कर्म-क्रिया द्वारा प्रकट होती है। दूसरे शब्दों में हमारे ख्याल, निश्चय तथा **कर्म** ही जीवन की रंगत का **प्रकटाव** हैं तथा हमारे 'व्यक्तित्व' की **कसौटी** है।

यदि हमारे विचार उत्तम, श्रेष्ठ तथा दैवीय हों, तब हमारा 'जीवन' भी उच्च-उत्तम, सुहावना तथा दैवीय बन सकता है।

बुरी तथा निम्न रुचियों वाले विचारों से असुरी अवगुण उत्पन्न होते हैं तथा हम लोभ-लालच, वैर-विरोध तथा चिंता फिकर में अहम् ग्रसित ग्लानि भरा 'जीवन' व्यतीत करते तथा दुखी होते हैं ।

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु।। (पृ. १३३)

अपने जीवन को **'बदलने'** के लिए सब से पहले हमारी अन्तर-आत्मा में अच्छे बुरे की पहचान या 'निर्णय शक्ति' अथवा **'विवेक बुद्धि' होनी आवश्यक है ।** परन्तु खेद की बात है कि हमारी बुद्धि इतनी मलिन हो गयी है कि हम अच्छाई तथा बुराई का **'निर्णय' करने से भी असमर्थ हो गये हैं ।** अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए मलिन कर्मों को भी **उचित** करार देने का प्रयत्न करते हैं ।

इस निर्णय शक्ति के **बिना** हम अपनी पुरानी गलत मलिन 'संगति' अथवा वातावरण की 'प्रणाली' में ही कर्म करते तथा परिणाम भोगते रहेगें ।

गुरबाणी के प्रकाश में 'संगति' के आंतरिक भावों की भिन्नता को प्रकट करने का प्रयास निम्नाकिंत वर्णन द्वारा किया जाता है —

उत्तम पवित्र आत्मिक सत्संगत अथवा साध संगति	**प्रचलित बाहर मुख तथा कथित मायिकी संगति**
अन्तर मुख खेल है	बाहर मुख कर्म-क्रिया है
आत्मिक विश्वास है	ऊपरी विश्वास है
आत्मिक ज्ञान है	मायिकी भ्रम-भुलाव है
'तूं-तेरी' है	मैं-मेरी है

निर्लेप है	खचित है
शुक्र है	शिकायत है
प्यार है	घृणा है
उदारता	ईर्ष्या-द्वेष है
मेल मिलाप	वैर-विरोध है
एक सुरता है	गुट बन्दी है
शान्ति है	अशान्ति है
स्वंय-न्यौछावर करना है	स्वार्थ है
'हथहु दे कै भला मनावै' है	ले कर खुश होना है
सेवा-भाव है	सेवा करवाने वाले है
सत्संग का प्यार है	कुसंगति की रुचि है
नाम-बाणी से जुड़े हैं	माया में डूबे हैं
'सुख रैण विहाणी' है	दुख क्लेश में कलपना हैं
प्रिम खेल है	मोह माया का अखाड़ा है
प्रेम स्वैपना है	मायिकी खींचतान है
रस रूप है	फोकट है
प्रेम आकर्षण है	मायिकी आर्कषण है
'हुकम रजाई चलणा' है	'आप मुहारे' है
नम्रता है	अहंकार है
निर्मलता है	मैल है
आत्मिक सुगन्ध है	मायिकी दुर्गन्ध है
सच का व्यवहार है	झूठ का बोलबाला है
आस्तिक है	नास्तिक है
गुरमुख हैं	मनमुख हैं।

इस **वर्णन** से हमें अपने ग्लानिपूर्ण मायिकी जीवन का अहसास होता है तथा उत्तम-पवित्र दैवीय जीवन की ओर **प्रेरणा तथा मार्गदर्शन** मिलता है । गुरबाणी में **'संगति' की परख यूँ** की गयी है—

हरि के दास सिउ साकत नही संगु ।।
ओहु बिखई ओसु राम को रंगु ।। (पृ. १९८)

ऊतम संगति ऊतमु होवै ।।
गुण कउ धावै अवगण धोवै ।। (पृ. ४१४)

दूजै भाइ दुसटा का वासा।। भउदे फिरहि बहु मोह पिआसा ।।
कुसंगति बहहि सदा दुखु पावहि दुरवो दुखु कमाइआ ।। (पृ. १०६८)

मनमुख सेती संगु करे मुहि कालख दागु लगाइ ।।
मुह काले तिन्ह लोभीआं जासनि जनमु गवाइ ।।
सतसंगति हरि मेलि प्रभ हरि नामु वसै मनि आइ ।। (पृ. १४१७)

गुरमुखि सुख फलु पिरमरसु मनमुख बदराही बदराहा ।
मनमुख टोटा गुरमुख लाहा ।। (वा०भा०गु०-१७/४)

उपरोक्त विचारों से स्पष्ट है कि जीव के लिए अपने आप इन तुच्छ रुचियों अथवा **'संस्कारों' को बदलना कठिन है।** इस नुक्ते को विस्तार पूर्वक यहाँ दर्शाया जाता है –

१ हम इस वर्तमान जीवन वेग में इस तेजी से बह रहे हैं अथवा खचित हैं कि हमें इस मायिकी जीवन की सीमा के बाहर **देखने या सोचने का ख्याल भी नहीं आता।** इस लिए जब हमें किसी अन्य उत्तम-पवित्र जीवन के विषय में **ज्ञान ही नहीं,** तब उस के अनुसार जीवन बदलने, ढालने तथा बनाने का **प्रश्न ही नहीं उठता ।**

२ यदि किसी जीव को उत्तम-पवित्र दैवीय जीवन का **दिमागी ज्ञान** हो भी जाये तो भी उस पर **निश्चय नहीं आता** तथा न आवश्यकता ही प्रतीत होती है। **बिना प्रतीत किये** उस जीवन प्रति मन में चाव, रुचि, जिज्ञासा तथा **इच्छा भी उत्पन्न नहीं होती ।**

३ कई जीवों को 'दैवीय जीवन' का ज्ञान भी होता है, परन्तु वे अपने पुराने मलिन **दृढ़ हुए सँस्कारिक जीवन वेग में ही बहते जाते हैं।**

किरत की बांधी सभ फिरै देखहु बीचारी।।
एस नो किआ आखीऐ किआ करे विचारी।। (पृ ३३४)

कबीर मनु जानै सभ बात जानत ही अउगनु करै।।
काहे की कुसलात हाथि दीपु कूए परै।। (पृ १३७६)

४ यदि किसी जीव को उच्च-उत्तम-पवित्र दैवीय जीवन के महत्त्व का ज्ञान हो भी जाये, तब मायिकी गिरावट वाले मार्ग को त्याग कर 'कठिन' दैवीय मार्ग की ऊँचाई के लिए साधना करने का मन में **साहस या उत्साह ही नहीं आता।**

५ कुछ जिज्ञासु उत्तम पवित्र दैवीय जीवन के लिए प्रयास तथा साधना भी करते हैं, परन्तु पुराने संस्कार इतने गहरे धँसे होते हैं कि शराबी की तरह, पुराने दृढ हुए अथवा अभ्यास किये हुए संस्कार पुन हमें उसी जीवन प्रणाली में खुद ब खुद बहा ले जाते हैं जिस कारण **हमारे सभी निश्चय, प्रयास व प्रयत्न निष्फल जाते हैं ।**

६ कई जिज्ञासुओं को साध संगति की महानता का ज्ञान तथा निश्चय भी होता है, परन्तु **पारिवारिक बंधन** के कारण, उन्हें सत्संगति अथवा साध संगति में आना अति कठिन हो जाता है । जब कभी भी ऐसा जिज्ञासु 'सत्संगति' या 'साध-संगति' में जाने की **इच्छा प्रकट करता** है, तब परिवार की ओर से कहा जाता है—

गृहस्थ पालना ही भक्ति है
नेक कर्म तथा सेवा करना ही पर्याप्त है
परमार्थ बेकारों का काम है तथा

जब घर में ही सिमरन व बाणी का पाठ हो सकता है, तब संगति के लिए घर के काम छोड़ कर, पैसा खर्च कर के, साध संगति में जाने की परेशानी तथा **समय की बरबादी की क्या आवश्यकता है ।** इस प्रकार होनहार जिज्ञासुओं का उत्साह दबाया जाता है तथा ऐसा करना 'आत्मिक पाप' है।

गुरबाणी में इस उच्च, उत्तम, पवित्र दैवीय जीवन के **विकट मार्ग** की ऊँचाई की **कठिनता** का वर्णन यूँ किया गया है—

वाट हमारी खरी उडीणी ।। खनिअहु तिखी बहुतु पिईणी।।

उसु ऊपरि है मारगु मेरा ।।
सेरव फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा ।। (पृ७९४)

जोगै का मारगु बिखमु है जोगी जिस नो नदरि करे सो पाए।।
अंतरि बाहरि एको वेखै विचहु भरमु चुकाए।। (पृ९०९)

चाला निराली भगताह केरी बिखम मारगि चलणा ।।
लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाही बोलणा।।
खंनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा ।। (पृ९१८)

मारगु पंथु न जाणउ विखड़ा किउ पाईऐ पिरु पारे ।। (पृ११११)

मारगु बिखमु डरावणा किउ तरीऐ तारी ।। (पृ१२४८)

कबीर जिह मारगि पंडित गए पाछै परी बहीर ।।
इक अवघट घाटी राम की तिह चड़ि रहिओ कबीर ।। (पृ१३७३)

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ ।।
सिरु धरि तली गली मेरी आउ ।।
इतु मारगि पैरु धरीजै।। सिरु दीजै काणि न कीजै ।। (पृ१४१२)

गुरमुखि मारग चलणा खंडे धार कार निबहंदा । (वा०भा०गु०२४/२१)

इस **कठिन** तथा **विकट दैवीय मार्ग** पर चलने के लिए गुरबाणी अनुसार 'सत्संगति' अथवा 'साध संगति' का मेल व मार्ग दर्शन तथा सहायता आनिवार्य है।

उदाहारण स्वरूप विकट मार्ग पर **'काफिले'** या **'कारवां'** द्वारा सफर करना निशंक, सरल, सुखदायी तथा लाभदायक होता है। इसीलिए कठिन दैवीय मार्ग पर चलने के लिए **'सत्संगति' अथवा 'साधसंगति' रूपी काफिले का सहारा, मार्गदर्शन तथा सहायता भी अति आवश्यक है।**

मिलि सतसंगति हरि गुण गाए जगु भउजलु दुतरु तरीऐ जीउ।। (पृ ९५)

सुणि सुणि पंथु डराउ बहुतु भैहारीआ।।
मै तकी ओट संताह लेहु उबारीआ।। (पृ २४०)

करि सेवहु पूरा सतिगुरू मेरे लाल जीउ जम का मारगु साधे राम।।
मारगु बिखड़ा साधि गुरमुखि हरि दरगह सोभा पाईऐ।। (पृ ५४२)

चरन भए संत बोहिथा तरे सागरु जेत।।
मारग पाए उदिआन महि गुरि दसे भेत।। (पृ. ८१०)

साध संगें हरि नाम रंगे संसारु सागरु सभु तरै।। (पृ ९२७)

साध संगति की भीर जउ पाई
तउ नानक हरि संगि मिरीआ।। (पृ १२०९)

साध संगति के **बिना** माया के **'भउजल बिखम असगाह'** सागर को पार करना असम्भव है–

खोजत खोजत सुनी इह सोइ।।
साधसंगति बिनु तरिओ न कोइ ।। (पृ ३७३)

डोलि डोलि महा दुखु पाइआ बिना साधू संग ।। (पृ. ४०५)

साध संगति विण भरम भुलाइआ ।। (वा०भा०गु०३९/१६)

इसी कारण गुरबाणी में **'सत्संगति','साध संगति'** अथवा बख्शे हुए गुरमुख प्यारों, महापुरुषों के मेल की अत्याधिक महिमा बताई गई है, जिसे यूँ दर्शाया गया है —

सो थानु सुहाइआ जो हरि मनि भाइआ।।
सतसंगति बहि हरि गुण गाइआ।। (पृ. ११५)

हम अपराधी राखे गुर संगती अपदेसु दीओ हरि नामु छडावै।। (पृ. १६७)

संत सभा कउ सदा जैकारु।।
हरि हरि नामु जन प्रान अधारु।। (पृ १८३)

संतसंगि हरि मनि वसै।।
दुखु दरदु अनेरा भ्रमु नसै।। (पृ. २११)

सतसंगति महि हरि उसतति है संगि साधू मिले पिआरिआ ।।
ओइ पुरख प्राणी धंनि जन हहि उपदेसु करहि परउपकारिआ ।।
हरि नामु द्रिड़ावहि हरि नामु सुणावहि हरि नामे जगु निसतारिआ ।। (पृ. ३११)

जो हरि राते से जन परवाणु ।।
तिन की संगति परम निधानु ।। (पृ ३५३)

नानक भेटे साध जब हरि पाइआ मन माहि ।। (पृ ४५५)

पारसु भेटि कंचनु धातु होई सतसंगति की वडिआई।। (पृ ५०५)

साध संगि नानक जसु गाइओ जो पुभ की अति पिआरी।। (पृ ५०८)

सुंदरु सुघडु सूरु सो बेता जो साधू संग पावै ।।
नामु उचारु करे हरि रसना बहुड़ि न जोनी धावै।। (पृ ५३१)

साध संगति कउ वारिआ भाई जिन एकंकार अधार।। (पृ ६०८)

जै जै कारु करै सभ उसतति संगति साध पिआरी ।। (पृ ६१५)

हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा ।।
कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना ।। (पृ६४२)

हरि के संत प्रिअ प्रीतम प्रभ के ता कै हरि हरि गाईऐ ।।
नानक ईहा सुखु आगै मुख ऊजल संगि संतन कै पाइऐ ।। (पृ७००)

महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता ।।
मैलु खोई कोटि अघ हरे निरमल भए चीता ।। (पृ ८०९)

जा दिन भेटे साध मोहि उआ दिन बलिहारी ।।
तनु मनु अपनो जीअरा फिरि फिरि हउ वारी ।। (पृ ८१०)

मन मिलु सतसंगती सुभवंती ।।
सुनि अकथ कथा सुखवंती ।। (पृ ९७७)

संगति का गुनु बहुतु अधिकाई पड़ि सूआ गनक उधारे ।।
परस नपरस भए कुबिजा कउ लै बैकुंठि सिधारे ।। (पृ ९८१)

गुर के सेवक सतिगुर पिआरे ।।
ओइ बैसहि तखति सु सबदु वीचारे ।।
ततु लहहि अंतरगति जाणहि सतसंगति साचु वडाई हे ।। (पृ १०२६)

संत मंडल महि हरि मनि वसै ।।
संत मंडल महि दुरतु सभु नसै ।।
संत मंडल महि निरमल रीति ।।
संतसंगि होइ एक परीति ।। (पृ ११४६)

हउ बलि बलि बलि बलि साध जनां कउ
मिलि संगति पारि उतरिआ।। (पृ १२९४)

गुरबाणी की उपरोक्त पक्तियों में **'सत्संगति'** अथवा **'साध संगति'** करने के अनेक गुण बताये गये हैं। उनके अनुसार सत्संगति अथवा साध संगति करते हुए हमारे सम्पूर्ण (overall) **जीवन में बदलाव आना चाहिए** तथा हमारे दैनिक जीवन के हर पक्ष में पहले से —

उत्तम

श्रेष्ठ

सुहानी

दैवीय

आत्मिक

'झलक' दिखायी देनी चाहिए ।

अपुसट बात ते भई सीधरी दूत दुसट सजनई ।।
अंधकार महि रतनु प्रगासिओ मलीन बुधि हछनई.....।।
आद आढ कउ फिरत ढूंढते मन सगल त्रिसन बुझि गई ।।
एकु बोलु भी खवतो नाही साधसंगति सीतलई ।। (पृ ४०२)
गुरमुखि होवै सु पलटिआ हरि राती साजि सीगारि ।। (पृ ७८५)
अन ते टूटीऐ रिख ते छूटीऐ ।।
मन हरि रस घूटीऐ संगि साधू उलटीऐ ।। (पृ ८३०)

इस प्रकार उत्तम पवित्र दैवीय भावना तथा **'जीवन-छूह' वाली संगति से 'मेल-मिलाप' अथवा 'संग' करके** हमारे मन की तुच्छ मलिन भावना की रंगत अथवा अवगुण धीरे-धीरे कम होते जायेगें तथा उन **अवगुणों के बदले दैवीय गुणों का प्रवेश होता जायेगा ।**

दूसरे शब्दों में सत्संगत अथवा साध संगति करते हुए हमारे मन में निम्नांकित **गुणों** का प्रवेश होना अनिवार्य है—

सत्

संतोष

दया

एकता

क्षमा

गरीबी

प्यार

मेल-जोल

उदारता

सेवा-भाव

परोपकार

मित्रता

शान्ति

हमदर्दी

धैर्य

विश्वास

विशालता

नम्रता

'भाणा'

ज्ञान

आस्तिकता

ईमानदारी

मिलवर्तन

कुरबानी

स्वंय न्यौछावर करना

प्रीत

प्रेम

रस

चाव, आदि।

यदि **इसके विपरीत** हमारे दैनिक जीवन के प्रत्येक पक्ष में **कोई परिवर्तन**

न आये तथा हम अपने पुराने जीवन-वेग के **बहाव में ही** –

ईर्ष्या

द्वेष

वैर

विरोध

निंदा

चुगली

जलन

कुढ़न

दुख

क्लेश

विषय-विकार

झूठ

डर

फरेब

चिंता

शक

बेईमानी

स्वार्थ

अहम्

मैं-मेरी

द्वैत भाव

खींचतान

लड़ाई

झगड़े

कड़वाहट

नफरत

बदला

काम

क्रोध

लोभ

मोह

अहंकार

आदि में **बहते जाते हैं,** तब **इस का कारण** यह है कि—

१ वह संगति 'सत्' या **आत्मिक भावों वाली नहीं है,** दिखावामात्र **तथाकथित संगति** ही है या ऐसे ही अहम् की ढीठाई में पाखन्ड है।

२ हम उत्तम पवित्र आत्मिक संगति में **भरी-पूरी** अहम् की परत चढ़ा कर भले-भद्र, ज्ञानी, ध्यानी तथा अफलातून **बन कर संगति में जाते हैं** तथा **'आत्मिक लाभ' लेने या 'आदान-प्रदान' करने की अपेक्षा,** वहां **'आलोचक'**(sanitary inspector) बन कर एक दूसरे पर—

टीका-टिप्पणी करते

नुक्ताचीनी करते

वाद विवाद करते

छिद्र खोलते

आरोप लगाते

हुए अपने **'अहम्' को चारा डालते हैं ।**

इस प्रकार संगति में **'लाभ' लेने की अपेक्षा 'हानि' उठा कर आते हैं।**

नावण चले तीरथी मनि खोटै तनि चोर ।।
इकु भाउ लथी नातिआ दुइ भा चड़ीअसु होर ।। (पृ. ७८९)

जिहवा रंगि नही हरि राती जब बोलै तब फीके ।।
संत जना की निंदा विआपसि पसू भए कदे होहि न नीके ।। (पृ. ११२६)

संतसंगि करहि जो बादु ।।
तिन निंदक नाही किछु सादु ।। (पृ. ११४५)

काथूरी को गाहकु आइओ लादिओ कालर बिरख जिवहा ।।
आइओ लाभु लाभन कै ताई
मोहनि ठागउरी सिउ उलझि पहा ।। (पृ १२०३)

३ हमारा जीवन मायिकी रंगत वाला होने के कारण हम 'संगति' में भी किसी न किसी मायिकी 'स्वार्थ' की पूर्ति के लिए ही जाते हैं। यदि हमारे मायिकी स्वार्थ की पूर्ति न हो, तब हमारा नाममात्र विश्वास या थोड़ी-सी श्रद्धा भी आलोप हो जाती है। इस प्रकार हम संगति से भी अश्रद्धक हो कर विमुख हो जाते हैं तथा दैवीय 'सत्संगति' अथवा 'साध संगति' के **लाभ से भी वंचित रहते हैं।**

४ 'तथाकथित संगति' के प्रभाव अधीन **परमार्थिक जीवन दिशा गलत होने के कारण** हम कई प्रकार के —

फोकट कर्म-काण्ड
शुष्क योग-साधना
प्राणायाम
हठ योग
तांत्रिक योग
जंत्र-मंत्र
जादू
करिश्मे
भूत-प्रेत वशीकरण
बलि चढ़ने
रिद्धियाँ-सिद्धयाँ
भविष्य वाणी
तीर्थ यात्रा

आदि **अनिश्चितता में ही फँसे रहते हैं** तथा सच्चे पवित्र आत्मिक मार्ग से **वंचित रहते हैं।**

जोगी जती तपी संनिआसी बहु तीरथ भ्रमना ।।
लुंजित मुंजित मोनि जटाधर अंति तऊ मरना ।। .....
आगम निरगम जोतिक जानहि बहु बहु बिआकरना ।।
तंत मंत्र सभ अउखध जानहि अंति तऊ मरना ।। (पृ ४७६)
काहूं लै पाहन पूज धरयो सिर काहूं लै लिंग गरे लटकाइओ ।।
काहूं लखिओ हरि अवाची दिसा महि काहूं पछाह को सीसु निवाइओ ।।

कोऊ बुतान को पूजत है पंसु कोऊ म्रितान को पूजन धाइओ ।।
कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग
सी भगवान को भेदु न पाइओ ।। (संवये पा. १०)
नाटक चेटक कीए कुकाजा ।।
प्रभ लोगन कह आवत लाजा ।। (ब.ना.पा. १०)
जप तप संजम होम जग करम धरम करि दान कराए ।।
निरंकार न पछाणिआ साध संगति दसै न दसाए ।।
सुणि सुणि आरवणु आखि सुणाए ।। (वा.भा.गु-३९/१४)

जब तक हमें संगति द्वारा —

उत्तम

श्रेष्ठ

सुहावने

सुखदायी

कलयाणकारी

दैवीय

आत्मिक

'जीवन – सीध', के विषय में सूझ, ज्ञान तथा **निश्चय न हो तथा आवश्यकता न प्रतीत हो** — तब तक हम अपने पुराने जीवन वेग छोड़ने या **त्यागने के लिए तैयार नहीं होते** तथा उस के लिए कोई सोच, मेहनत तथा साधना नहीं कर सकते।

यह उत्तम-पवित्र कल्याणकारी आत्मिक 'जीवन' की सूझ, ज्ञान तथा निश्चय **'शबद-सुरति' में पिरोयी हुई जीवन्त 'आत्म-छुह' वाली सत्संगत अथवा साध संगति द्वारा ही उत्पन्न होता तथा दृढ़ हो सकता है।**

हमारा ग्लानि भरा जीवन या व्यक्तित्व अनगिनत जन्मों के रव्यालों, कर्मों तथा कुसंगति का **सामूहिक 'संग्रह' तथा 'परिणाम' है।** इस लिए मानसिक जीवन में परिवर्तन के लिए भी **अत्यंत समय तक लगातार 'सतसंगत' अथवा 'साध संगति' करने की आवश्यकता है।**

बरव्शे हुए गुरमुख प्यारे आत्मिक जीवन वाले **महापुरुषों की 'संगति' तथा 'सेवा ' द्वारा यह आत्मिक परिर्वतन शीध्र तथा सरल हो सकता है।**

क्रमश .....